बौद्ध साहित्य का आर्थिक आयाम

डॉ0 रवि रंजन कुमार*

प्रारम्भिक काल से ही अर्थ की महत्ता रही है और अर्थ के बिना संपूर्णता को नहीं प्राप्त किया जा सकता। आज भी कहा जाता है अर्थ सबकुछ नहीं है लेकिन बहुत कुछ है अर्थात् अर्थ की महत्ता को इंकार नहीं कर सकते। अगर अर्थ नहीं होते तो बौद्ध धर्म, संघ, विहार अपने उद्देश्य की पूर्ति नहीं कर सकते थे। शिक्षा के विविध अंगों जैसे शिक्षको–छात्रों के पोषण, विहारों के संपोषण, बौद्ध उत्सव आदि के समूचित प्रबंधन के लिए अर्थ की आवश्यकता होती रही है। अगर विभिन्न राजाओं, प्रजाओं से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से अर्थ की प्राप्ति नहीं होती है तो बौद्ध शिक्षा को आज कौन जानता। इसके बिना बौद्ध शिक्षा का पल्लवन–पुष्पन एवं प्रवजन नहीं हो पाता। पालि एवं अन्याय बौद्ध साहित्यों में बौद्ध शिक्षा एवं विहारों के आर्थिक प्रबंधन के अनेक उल्लेख मिलते है जिनकी संपुष्टि पुरावशेषों से होती है और आज हम उसकी जाँच–पड़ताल विदेशी वृतांतों एवं परंपराओं से करते है।

प्राचीन भारत में विधा दान को सर्वोत्तम दान माना जाता था क्योंकि इस समय की सामाजिक व्यवस्था धर्म से प्रभावित। बौद्ध शिक्षा भी इससे अछूति नहीं रही। इसमें रचनात्मक प्रवृत्तियों का विकास हुआ और जैसे–जैसे ज्ञान का विस्तार होता गया। यह और भी गंभीर होती गयी। ज्ञान की जिज्ञासा ने योजनामूलक एवं संगठित तरीका अपना लिया। शैनेः–शैनेः शिक्षा ने संस्थागत रूप ले लिया। मठों में हजारों भिक्षु एवं शिक्षक रहते थे और विभिन्न अवसरों पर दिए गए उपहार एवं धन प्रर्याप्त नहीं रह गए। इस तरह के बड़े संस्थाओं के निर्वाहन के लिए संगठित अर्थव्यवस्था अनिवार्य थी। इसमें राज्य, समाज, उपहार, शुल्क धर्मस्व जैसे आर्थिक संसाधन की भूमिका महत्वपूर्ण रही है।

बौद्ध शिक्षा के आर्थिक प्रबंधन में राज्य का योगदान सर्वोपरि था। शिक्षा को राजकीय संरक्षण प्राप्त था। अशोक ने अपने संपूर्ण साम्राज्य में कई मठ, संघ तथा प्रस्तर लेख स्थापित कर शिक्षा को बढ़ावा दिया। उसने केवल काश्मीर में पाँच

*राम जन्म राय डिग्री महाद्यिालय अलोनी, गड़खा,छपरा (सारण)

सौ मठ बनवाए जिसमें हवेनसांग ने सौ के देखने की बात कही है।[1] मिलिन्दपञन्हो से हमें जानकारी मिलती है कि राजा शिल्पी, कारीगरों को प्रोत्साहन देते थे।[2]

उत्तर एवं मध्य भारत में सातवाहन, शक एवं कुषाण राजाओं ने अनेक मठ बनाए। कनिष्क विद्वानों का आश्रयदाता था। प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान नार्गार्जुन अश्वघोष, वसुमित्र और प्रख्यात वैद्य चरक को संरक्षण प्राप्त था। इसी प्रकार गुप्त राजाओं ने भी विद्वानों को अपनी सेवा प्रदान की। प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान बसुबंधु गुप्तकाल में हुए थे। वाणभट्ट के अनुसार हर्ष ने विद्वानों की मदद की और अपने राज्य की नीति बना ली थी कि राजा की भूमि से प्राप्त राजस्व का चौथ हिस्सा उच्च बौद्धिक ख्याति के लिए पारितोषिक रूप[3] में दिया जाए। जातकमाला की रचना उसके प्रोत्साहन का फल है। हर्ष ने प्रसिद्ध चीनी यात्री बौद्ध विद्वान हवेनसांग को 'विधि पारंगत' की उपाधि दी और दस हजार स्वर्णमुद्राएं, तीस हजार रजत मुद्राएं और एक सौ सुंदर वस्त्र दिए थे। इसके अतिरिक्त 18 राज्यों के राजकुमारों ने भी हवेनसांग को अमूल्य रत्न प्रदान किए। जयसेन हवेनसांग के बहुयामी ज्ञान से इतना प्रभावित था कि उन्होंने उड़ीसा के 80 बड़े–बड़े गाँवों का राजस्व प्रदान करना चाहा[4] ऐसे साक्ष्य भी प्राप्त हुए है जिसे पता चलता है कि विध ाार्थियों राजा की ओर से शिक्षा केन्द्रों में जाते थे और उनका पूरा खर्च राजकीय कोष से दिया जाता था।[5] शिक्षण संस्थाओं को बड़े–बड़े दान दिए जाते थे। हवेनसांग लिखता है कि 'एक के बाद एक मगध के छः राजाओं ने नालंदा महाविहार के निर्माण में सहयोग दिया। लगभग एक सौ गाँवों के राजस्व को विद्यालय के धर्मस्व को प्रदान किए गए।[6] नालंदा मठ के पास हर्ष ने एक विहार बनवाया जो पीतल की चादर से मढ़ा गया। इत्सिंग ने लिखा है कि नालंदा महाविहार के पास बहुत धन था तथा दो सौ से अधिक ग्रामों का राजस्व उसे मिलता था। यह एक ऐसा धर्मस्व था जिसके लिए मठ कई पीढ़ियों के राजाओं की दानशीलता के आभारी थे।[7] ध्याननीय है कि यह सब राजकीय संरक्षण बिना किसी शर्त का था। शिक्षण संस्थाओं पर कोई अंकुश नहीं था। गुप्त राजवंश का राजा नरसिंहबालादित्य जब नालंदा महाविहार के वरिष्ठता के परंपरागत नियमों में संशोधन करना चाहा तो भिक्षुओं ने उसकी मांग को अस्वीकार कर दिया। राजा की आज्ञा न पालन करने पर भी संस्था के राजकीय संरक्षण को कोई खतरा नहीं था। राज्य अनुशासन के बारे में बीच में पड़ सकता था।[8] लेकिन यह उदारता के पक्ष में रहता था।

अर्थव्यवस्था के सुदृढीकरण में समाज की भूमिका भी अग्रणी था। लोग विद्वानों को दिए जाने वाले सहायता को उपहार के रूप में देखते थे। ''ज्ञानी पुरूष

को दिया जानेवाला दान शाश्वत है।'[9] उत्तराधिकारी न होने की स्थिति में मृत्यु होने पर मरनेवाले की संपत्ति ज्ञानी पुरूष ले लेते थे। इन लोगों को खाद्य सामग्री पर कर नहीं देना पड़ता था और पूजा के लिए आवश्यक चीजें बिना कीमत प्राप्त हो जाती थी। सामंत, महाजन एवं अन्य आपसी प्रतिस्पर्धा में विद्यालय स्थापित करते व विद्वानों को उपहार प्रदान करते। वह सब वे ईश्वर के नाम पर करते थे।[10]

उपहार भी एक महत्वपूर्ण आर्थिक स्त्रोत था। भिक्षु के लिए पोषणार्थ भिक्षा माँगने की रीति थी। घर–घर जाकर भिक्षा एकत्रित करना उनका मुख्य कार्य था। लेकिन नए भिक्षु विहार में शारीरिक कार्य करते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि भिक्षा माँगने, दान का तरीका, घरों की सूची जिनसे भिक्षा ली जा सकती थी, नामावली पूर्व निश्चित थी। संघ एवं उसके सदस्य वस्तु रूप में दान ले सकते थे लेकिन मूल्य के रूप में नहीं। धन से संपर्क नहीं रखते थे। अगर कोई भिक्षु ऐसा करता था तो उसे अपराधी माना जाता था। धम्मपद[11] में लिखा है कि अपराधी भिक्षु को अपनी सारी संपत्ति संघ को देनी होगी। संघ इसको किसी उपासक को दे देगा और इसके बदले शहद, घी, तेल की प्राप्ति हो जाएगी तथा यह पूरे संघ की संपत्ति होगी। चुल्लवग्ग एवं महावग्ग ने संघ की संपत्ति का विस्तार से वर्णन किया है, कई प्रकार की संपत्ति अचल संपत्ति मानी जाती थी जैसे (1) उधान की भूमि (2) विहार (3) थैला, कुसी एवं तकिया (4) पीतल का पात्र, लोटा कलश (5) कुल्हाड़ी फावड़ा जैसे औजार (6) बाँस (7) चीनी मिट्टी एवं लकड़ी के बर्त्तन एवं अन्य वस्तुएँ।

आर्थिक स्त्रोत का अन्य साधन, सेवाओं द्वारा एकत्रित शुल्क था। भिक्षु या तो अग्रिम शुल्क देते थे या शिक्षा सामाप्त होने पर। यह षुल्क संस्था में रहने के समय मे या तो वस्तु के रूप में अथवा सेवाओं के रूप में ली जाती थी। जातक[12] में ऐसे शिष्यों उल्लेख है जो शिक्षक के लिए ईंधन लाते थे अनावासिन छात्र भी अपना शिक्षण शुल्क देते थे। तकनीकी शिक्षण के लिए शुल्क भिक्षु अपने शिक्षक को देता था। जातक[13] में लिखा है व्यापारी के दो पुत्रों में से प्रत्येक ने जो व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त करने आए थे, दो–दो हजार मुद्राएँ शिक्षण शुल्क के रूप में दी थी। ज्ञान की विभिन्न शाखाओं के मर्मज्ञ शिक्षण देने के बाद जन समान्य की सेवा में अपना समय देते थे। वैद्य, ज्योतिष स्थपति, एवं शिक्षक और अन्य विशेषज्ञ जनता को अपनी सेवा प्रदान करते थे और उनकी सेवाओं के बदले जो कुछ मिलता था। वह स्वीकार की जाती थी। दो प्रसिद्ध वैद्य, जीवक एवं कुमारभृत्य का उल्लेख मिलता है जिनको साकेत, काशी और उज्जैन बुलाया जाता था। 'नवकम्मिका भी इसी प्रकार भवन निर्माण कार्यों में दक्ष था, जिसको सेवा देने

के लिए कई जगहों से बुलावा आता था। महामारी के समय लोग संघ में बड़ी संख्या में भर्ती हो जाते थे और अच्छे होने पर वापस जाते थे। इन विशिष्ट सेवाओं के बदले प्राप्त षुल्क संस्था की आय के अतिरिक्त साधन था।

शिक्षा के आर्थिक स्त्रोत के रूप में धर्मस्व के दान का उल्लेख मिलता है। धनी व्यापारियों द्वारा कई विहार बनवाए गए थे। इनमें उल्लेखनीय है राजगृह के यष्टिवन, वेणुवन, शीतवन, श्रावास्ती का पुब्बाराम, वैशाली का कुटाग्राम, कपिलवस्तु का निरोगाधाम एवं कौशांबी का घोषितिाराम विहार। इनमें संबंधित सामग्री एवं अधिकारी रहते थे।14 इन भवनों के रक्षण एवं मरम्मत का अधिकार दाता पर निर्भर करता है। इस उद्देश्य के लिए वह गाँव एवं जमीन दान कर देता था जिसके राजस्व से न केवल भवनों को ठीक से मरम्मत किया जाता था बल्कि व्यवस्थापन का व्यय भी पूरा किया जाता था। ईत्सिंग ने इन धर्मस्वों के विषय में लिखा है 'क्योंकि महान् ज्ञानी बुद्ध द्वारा पुजारियों द्वारा कृषि कर्म वर्जित था, इसलिए अपनी कृषि योग्य भूमि दूसरों को जोतने के लिए दे देते थे तथा उपज का थोड़ा सा अंश ले लेते थे। खेतों एवं बगीचों की उपज और पेड़ों एवं फलों से मिलनेवाला लाभ प्रतिवर्ष हिस्सों में विभाजित कर दिया जाता था।

इस प्रकार हम देखते है कि बौद्ध शिक्षा और बौद्ध विहार के समूचित प्रबंधन के लिए आर्थिक स्त्रोत महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती रही है। स्वयं भगवान गौतम बुद्ध जहाँ–जहाँ ठहराव रखते थे और प्रवचन देते थे वह स्थल राजाश्रय से प्रभावित होता था। राजा अपने कोष से उसके लिए अलग से प्रबंध न का आदेश देते थे। इसके अनेकानेक साक्ष्य मिलते हैं। वर्तमान काल में भी बौद्ध शिक्षा से संबंधित स्थल बौद्ध परिसरों में तब्दील होकर अर्थ के केन्द्र बन गये है और बौद्ध नगर का रूप लेते जा रहे हैं।

संदर्भ–सूची :

1. बील सम्युअल – लाइफ ऑफ हवेनसांग, पृ॰ 61
2. रिजडेविस, मलिन्दपन्हो vi, 9 एवं 10
3. वाटर्स, टी॰– युवान–चुवांग ट्रवेल्स इन इंडिया, लंदन, 1904
4. काबेल एवं टॉमस, हर्षचरित, पृ॰ 62
5. जातक iii, 238 एवं 247, 263
6. सैम्युअल वील – वही 110–111
7. ताकाकुसु – ए कारकैर्ड ऑफ बुद्धिष्ट रिलीजन वाई इत्सिग ऑक्सफोर्ड, 1896, पृ॰ 65

8. शामशास्त्री आर॰ – कौटिल्य अर्थशास्त्र, पृ॰ 224
9. वृहस्पति संहिता, 1, 56
10. अलत्तेकर, ए॰ एस॰ – एजुकेशन इन एशियंट इंडिया, बनारस, 1968, पृ॰ 59।
11. धम्मपद, पंक्ति 235
12. जातक 1,317–318
13. जातक iv, 224–25 एवं 38–39
14. महापरिनिर्वाण सुत, अध्याय 3
15. ताकाकुसु, वही पृ॰ 193–194

*****